यशोधर्मराजकालिकः

मन्दसौर-कूपशिलालेखः

संक्षिप्त परिचय

यह अभिलेख मध्यप्रदेश के मन्दसौर नगर में स्थित दुर्ग के पूर्वी द्वार के निकट एक कुएँ में लगे काले रंग की चौकोर प्रस्तर-शिला पर उत्कीर्ण है। शिला १'-१०" चौड़ी और १'-५" ऊंची है। अभिलेख २५ पंक्तियों में पूरा हुआ है। यह अभिलेख सर्वप्रथम डा० फ्लीट द्वारा गुप्त अभिलेखों के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

इस अभिलेख की तिथि ५८६ मालव-सम्वत् (५३२ ई०) का वसन्त काल इसके २४वें पद्य में उत्कीर्ण है।

भाषा संस्कृत और लिपि उत्तरकालीन उत्तरी ब्राह्मी है। लेखक का नाम गोविन्द दिया गया है।

इस अभिलेख का उद्देश्य सम्राट् यशोधर्मन् (=विष्णुवर्धन) के पश्चिम प्रान्त के शासक धर्मदोष के छोटे भाई दक्ष के द्वारा अपने स्वर्गीय चाचा अभयदत्त की स्मृति को एक विशाल कूप के निर्माण के द्वारा चिरस्थायी बनाना है।

प्रथम तीन पद्यों में शिव की स्तुति और पाठकों के मंगल की कामना की गई है। चौथे पद्य में तोयाधिपति सागर से कूप के स्वामी के यश की चिरकाल तक रक्षा की प्रार्थना है। अगले पांच (५-९) पद्यों में यशोधर्मा (विष्णुवर्धन) के शत्रुओं के प्रति पराक्रम, उसके औलिकर नामक उन्नत वंश, पूर्व और पश्चिम के राजाओं को साम, युद्ध आदि के द्वारा वश में करके राजाधिराज परमेश्वर की उपाधि की प्राप्ति, सौराज्य के कारण अनेक देशों के सुख और समृद्धि तथा उसके सैन्य-प्रयाणों का वर्णन है। तत्पश्चात् उसके जितेन्द्रिय और धनी सेवक षष्ठिदत्त का वर्णन है, जिससे नैगमों का गौरवशाली वंश फैला (१०-११)। उसका आज्ञाकारी और यशस्वी पुत्र वराहदास हुआ (१२)। उसका सन्मार्ग पर चलने वाला और कुलीनता की रक्षा करने वाला रविकीर्त्ति नामक पुत्र था (१३-१४)। उसके, भानुगुप्ता नामक पत्नी से, तीन पुत्र उत्पन्न हुए (१५)। ज्येष्ठ भगवद्दोष था जो उद्धव और विदुर के समान नीतिमान् और संस्कृत तथा प्राकृत काव्यरचना में निपुण था (१६-१७)। दूसरा अभयदत्त था जो पश्चिमी प्रान्त का राज्यपाल बना (१८-१९)। तीसरा दोषकुम्भ था, जिसके पुत्र धर्मदोष ने अपने चाचा अभयदत्त के पश्चात् शासन-भार को संभाला (२०-२१)। धर्मदोष के अनुज दक्ष ने, जिसका दूसरा नाम निर्दोष था, ५८९ मालव-संवत् में वसन्त ऋतु में यह कुआं बनवाया (२२-२६)। २७वें पद्य में कूएँ की दीर्घ आयु और २८वें में दक्ष की दीर्घ आयु की कामना की गई है। अन्त में लेखक का नाम गोविन्द दिया गया है।

यशोधर्मराजकालिकः

मन्दसौर-कूपशिलालेखः

सिद्धम्

स जयति जगतां पतिः पिनाकी
स्मितरवगीतिषु यस्य दन्तकान्तिः।
द्युतिरिव तडितां निशि स्फुरन्ती
तिरयति च स्फुटयत्यदश्च विश्वम् ॥१॥

अ०—सिद्धम् सिद्धि हो। **निशि** रात्रि में **स्फुरन्ती तडितां द्युतिः इव** बिजलियों की लसलसाती द्युति की तरह **स्मित-रव-गीतिषु** मुस्कान, भाषण और गान में **यस्य दन्तकान्तिः** जिसके दांतों की कान्ति **अदः विश्वम्** इस लोक को **तिरयति च स्फुटयति च** ढक रही है और प्रकट कर रही है, **जगतां पतिः** लोकों के स्वामी **सः पिनाकी जयतु** उस पिनाकधारी (शिव) की जय हो ॥१॥

टि०—पिनाकी पिनाकः धनुः, सः अस्य अस्तीति पिनाकी। **शिवः**। **तिरयति** तिरोदधाति 'ढकती है'। **स्फुटयति** स्फुटं करोति, प्रकटयति, प्रकाशयति 'प्रकाश में लाती है' ॥१॥

स्वयम्भूर्भूतानां स्थितिलयसमुत्पत्तिविधिषु
प्रयुक्तो येनाज्ञां वहति भुवनानां विधृतये।
पितृत्वं चानीतो जगति गरिमाणं गमयता
स शम्भुर्भूयांसि प्रतिदिशतु भद्राणि भवताम् ॥२॥

अ०—येन जिसके द्वारा **भूतानां** प्राणियों के **स्थितिलयसमुत्पत्तिविधिषु** स्थिति, संहार और उत्पत्ति रूप कार्यों में **प्रयुक्तः** नियुक्त किया हुआ **स्वयम्भूः** ब्रह्मा **भुवनानां विधृतये** लोकों के धारण के लिए **आज्ञां वहति** आज्ञा का पालन कर रहा है, **जगति च** और लोक में **गरिमाणं गमयता (येन)** बड़प्पन देने वाले जिसके द्वारा **(सः) पितृत्वं आनीतः** वह (ब्रह्मा) पिता (-मह) के पद पर पहुंचा दिया गया है, **सः शम्भुः** वह भगवान् शिव **भवताम् भूयांसि भद्राणि प्रतिदिशतु** आप लोगों के बहुत बहुत कल्याणों को करे ॥२॥

टि०—भूतानां प्राणिनाम्। **प्रयुक्तः** नियुक्तः। **स्वयम्भूः** स्वयं भवति

इति, ब्रह्मा । **विधृतये** धारणाय। **गरिमाणम्** महिमानं । **गमयता** प्रापयता । √गम्+इ (णिच्)+अ (शप्)+अत् (शतृ), तृ०, ए० । **पितृत्वम्** पितामहपदम् । **प्रतिदिशतु** करोतु ॥२॥

फणमणिगुरुभाराक्रान्तिदूरावनम्रं
स्थगयति रुचमिन्दोर्मण्डलं यस्य मूर्ध्नाम् ।
स शिरसि विनिबध्नन् रन्ध्रिणीमस्थिमालां
सृजतु भवसृजो वः क्लेशभङ्गं भुजङ्गः ॥३॥

अ०—फणमणिगुरुभाराक्रान्तिदूरावनम्रं फणों की मणियों के भारी बोझ के पड़ने से अत्यधिक झुका हुआ **यस्य मूर्ध्नां मण्डलम्** जिसके मस्तकों का मण्डल **इन्दोः रुचम्** (शिव के सिर पर स्थित) चन्द्रमा के प्रकाश को **स्थगयति** ढक देता है, **शिरसि** (शिव के) सिर पर **रन्ध्रिणीम् अस्थिमालाम्** छिद्रयुक्त हड्डियों की माला को **विनिबध्नन्** बांधता हुआ **भवसृजः** संसार का सर्जन करने वाले (=शिव)का **सः भुजङ्गः** वह सर्प **वः क्लेशभङ्गं सृजतु** तुम्हारे क्लेशों के विनाश को उत्पन्न करे ॥३॥

टि०—फणमणि० फणवर्तिनां मणीनां गुरुभारस्य आक्रान्त्या आपतनेन दूरम् नितराम् अवनम्रम् अवनतम् । **मूर्ध्नाम्** मस्तकानाम् । **इन्दोः** चन्द्रस्य । शिवमस्तकस्थस्य इति शेषः । **स्थगयति** आवृणोति । **रन्ध्रिणीम्** रन्ध्राणि छिद्राणि अस्याः सन्ति, ताम् । **भवसृजः** भवं सृजति इति, तस्य शङ्करस्य । सामान्यतः ब्रह्मा को सृष्टि का कर्ता, विष्णु को पालक और शिव को संहारक माना जाता है , परन्तु वैष्णव तथा शैव अपने अपने इष्ट देवताओं में तीनों लक्षणों का आरोप करते हैं । **क्लेशभङ्गम्** क्लेशानां भङ्गम् विनाशम् । यहां 'छिद्रों वाली हड्डियों की माला को बांधता हुआ शिव का सर्प' इस वाक्यांश से यह व्यञ्जित होता है कि सर्प हड्डियों के छिद्रों में सूत्र रूप से पिरोया जाकर उन्हें माला का रूप प्रदान कर रहा है ॥ ३ ॥

षष्ट्या सहस्रैः सगरात्मजानां खातः खतुल्यां रुचमादधानः ।
अस्योदपानाधिपतेश्चिराय यशांसि पायात् पयसां विधाता ॥४॥

अ०—सगरात्मजानां षष्ट्या सहस्रैः खातः सगर के साठ हज़ार पुत्रों के द्वारा खोदा गया, **खतुल्यां रुचम् आदधानः** आकाश के समान कान्ति को धारण करने वाला **पयसां विधाता** जलों का विधाता (समुद्र) **अस्य उदपानाधिपतेः यशांसि** इस कूए के स्वामी के यशों की **चिराय पायात्** चिरकाल तक रक्षा करे ॥ ४ ॥

टि०—सगरात्मजानाम् एक पौराणिक कथा के अनुसार सगर के साठ हजार पुत्रों ने अपने पिता के अश्वमेध के घोड़े की खोज में पृथ्वी को खोद डाला था, जिससे समुद्र की उत्पत्ति हुई। इसी लिये उसे सागर कहा जाता है। **षष्ट्या सहस्रैः**—**षष्ट्या** (स्त्री० तृ० ए०) **सहस्रैः** (नपुं०, तृ०, ब०) का विशेषण है। एकोनविंशति से नवनवति तक सभी संख्यावाचक शब्द नित्य-स्त्रीलिङ्ग और एकवचन हैं। **उदपानाधिपतेः** उदपानस्य कूपस्य अधिपतेः स्वामिनः निर्मातुः इत्यर्थः। उदकं पिबन्ति अस्मिन् इति उदपानः उदपानं वा। संज्ञा अर्थ में उदक को उद आदेश होकर √पा धातु से अधिकरण में अन (ल्युट्) प्रत्यय हुआ॥ ४॥

> अथ जयति जनेन्द्रः श्रीयशोधर्म्मनामा
> प्रमदवनमिवान्तः शत्रुसैन्यं विगाह्य।
> व्रणकिसलयभङ्गैर्योऽङ्गभूषां विधत्ते
> तरुणतरुलतावद् वीरकीर्त्तीर्विनाम्य॥५॥

अ०—अथ तत्पश्चात् **श्रीयशोधर्मनामा जनेन्द्रः** जयति श्री यशोधर्मा नामक नरेन्द्र की जय हो, **यः** जो **प्रमदवनम् इव** प्रमदवन की तरह **शत्रुसैन्यम् अन्तः विगाह्य** शत्रु-सेना को अन्दर से रोंदकर **तरुणतरुलतावद्** वयःस्थ वृक्षों की शाखाओं की तरह **वीरकीर्त्तीः विनाम्य** वीरों की कीर्त्तियों को झुका कर **व्रणकिसलयभङ्गैः** ज़ख्मों रूपी पल्लवों के टुकड़ों से **अङ्गभूषां विधत्ते** अङ्गभूषा का विधान करता है (=अंगों को सजाता है)॥ ५॥

टि०—अथ तदनन्तरम्। मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथोऽथ इत्यमरः (३।३।२४८)। **जनेन्द्रः** नरेन्द्रः, राजा। **प्रमदवनम्** प्रमदानाम् कामिनीनाम् क्रीडार्हं वनम् उपवनम्। **विगाह्य** आलोड्य। वि√गाह्+य (ल्यप्)। **व्रणकिसलयभङ्गैः** व्रणानि क्षतानि एव किसलयानि पल्लवानि तेषां भङ्गैः विच्छित्तिभिः। **विनाम्य** वि+√नम्+(णिच्)+य(ल्यप्)। **ज्वल-ह्वल-ह्मल-नमामनुपसर्गाद् वा** वार्तिक से अनुपसर्गपूर्वक **नम्** धातु विकल्प से मित् संज्ञक होता है। उपसर्गपूर्वक तो नित्य ही मित् होता है। अतः **अत उपधायाः** (पा० ७।२।११६) से उपधा के अकार को प्राप्त वृद्धि को **मितां ह्रस्वः** (पा० ६।४।९२) से ह्रस्व होकर **विनमय्य** रूप सिद्ध होता है। विनाम्य अपाणिनीय है। मोनियर विलियम्स् अपने कोश में दोनों ही रूप देता है॥ ५॥

> आजौ जिती विजयते जगतीं पुनश्च
> श्रीविष्णुवर्धननराधिपतिः स एव।

प्रख्यात औलिकरलाञ्छन आत्मवङ्शो
येनोदितोदितपदं गमितो गरीय: ॥६॥

अ०—पुनश्च और येन जिसके द्वारा प्रख्यात: प्रसिद्ध औलिकरलाञ्छन: औलिकर चिह्न वाला आत्मवंश: अपना वंश गरीय:उदितोदितपदं गमित: महान् (और) ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँचा दिया गया है, आजौ जिती संग्राम में विजयी श्रीविष्णुवर्धननराधिपति: श्री विष्णुवर्धनराज (अपरनामा) स: एव उसी (श्री यशोधर्मा) की जगतीं विजयते पृथिवी पर जय हो ॥ ६ ॥

टि०—वंश: अभिलेख में उत्कीर्ण पाठ वङ्श: है। इसे वंश ही पढ़ना चाहिये। अन्यत्र भी श् से पूर्व ङ् के स्थान पर अनुस्वार पाठ करना चाहिये। औलिकर शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है। सम्भवत: यह 'शीत-रश्मि, चन्द्रमा' का वाचक है। फ़्लीट महोदय के अनुसार इसके अर्थ 'घर्मांशु, सूर्य' या 'शीतांशु, चांद' दोनों ही हो सकते हैं। लाञ्छन (=चिह्न, छाप, प्रतीक)। फ़्लीट के अनुसार यह उस मुख्य चिह्न के लिये प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द है, जो कि राजाओं द्वारा अपने राजपत्रों से सम्बद्ध ताम्र-मुहरों पर अंकित किया जाता था। उदितोदितपदम् उदितम् उदितम् च, अत्युच्चं पदम् गमित:√गम्+इ(णिच्)+त (क्त), प्रथमा, ए०। आजौ संग्रामे। जिती जितम् अस्य अस्ति इति। कुछ के अनुसार इष्टादिभ्यश्च (पा० ५।२।८८) से इनि प्रत्यय। परन्तु जित इष्टादिगण में पठित नहीं है। श्री विष्णुवर्धननराधिपति: यह श्रीयशोधर्मा का दूसरा नाम है। स एव से भी इसकी पुष्टि होती है ॥ ६ ॥

प्राचो नृपान् सुबृहतश्च बहूनुदीच:
साम्ना युधा च वशगान् प्रविधाय येन।
नामापरं जगति कान्तमदो दुरापं
राजाधिराजपरमेश्वर इत्युदूढम् ॥७॥

अ०—येन जिसके द्वारा सुबृहत: प्राच: नृपान् पूर्व के बड़े-बड़े राजाओं बहून् उदीच: (नृपान् च) और उत्तर के बहुत से राजाओं को साम्ना युधा च साम और युद्ध के द्वारा वशगान् प्रविधाय वश में करके जगति लोक में राजाधिराजपरमेश्वर: इति राजाधिराजपरमेश्वर अद: यह कान्तम् कमनीय दुरापं (च) और दुर्लभ अपरं नाम दूसरा विरुद उदूढम् धारण किया गया है ॥ ७ ॥

टि०—प्राच: प्राग्दिग्वर्तिन: 'पूर्व दिशा में वर्तमान'। प्राञ्च्, द्वितीया, ब०। उदीच: उदग्दिग्वर्तिन: 'उत्तर दिशा में विद्यमान'। उदञ्च्, द्वि०, ब०। उदूढम् उद् √वह्+त (क्त), नपुं० प्रथमा, ए० ॥ ७ ॥

स्निग्धश्यामाम्बुदाभैः स्थगितदिनकृतो यज्वनामाज्यधूमै-
रम्भो मेध्यं मघोनावधिषु विदधता गाढसम्पन्नसस्याः ।
संहर्षाद् वाणिनीनां कररभसहृतोद्यानचूताङ्कुराग्रा
राजन्वन्तो रमन्ते भुजविजितभुवा भूरयो येन देशाः ॥८॥

अ०—स्निग्धश्यामाम्बुदाभैः यज्वनाम् आज्यधूमैः याजकों के चिकने और श्याम मेघों की आभा वाले घृत के धुओं से **स्थगितदिनकृतः** ढके हुए सूर्य वाले, **अवधिषु** (उचित) अवधियों पर **मेध्यम् अम्भः विदधता मघोना** पवित्र (वर्षा-) जल का विधान करने वाले इन्द्र के द्वारा **गाढसम्पन्नसस्याः** घनी और सम्पन्न फसलों वाले **संहर्षात्** हर्ष के कारण **वाणिनीनाम्** विदग्ध वनिताओं के **कररभसहृतोद्यानचूताङ्कुराग्राः** हाथों से उतावल के साथ तोड़े गए उद्यानों में स्थित आम्रवृक्षों के (मौर-) अङ्कुरों के अग्रभागों वाले **भूरयः देशाः** बहुत से देश **भुजविजितभुवा** भुजाओं से विजित भूमियों वाले **येन** जिससे **राजन्वन्तः (सन्तः) रमन्ते** राजन्वान् होकर आनन्दित हो रहे हैं ।। ८ ।।

टि०—यज्वनाम् वेदविधानेन कृतयागानाम् 'वेद के विधान के अनुसार यजन करने वालों के । यज्वा तु विधिनेष्टवान् इत्यमरः (२।७।८) । **स्थगितदिनकृतः** स्थगितः आवृतः दिनकृत् सूर्यः येषु ते । **मेध्यम्** यज्ञ के धुएं से बने बादलों से बरसने के कारण पवित्र । **गाढसम्पन्नसस्याः** गाढानि सम्पन्नानि च सस्यानि येषु ते, यद्वा गाढं यथा स्यात् तथा सम्पन्नानि सस्यानि येषु ते । **वाणिनीनाम्** विदग्धवनितानाम् । वाणः वाणमयः वाद्यविशेषः स अस्या अस्ति इति वाणिनी । गाने बजाने वाली स्त्री, नर्तकी । कालान्तर में इस का अर्थ विदग्धा, मत्ता स्त्री हो गया । **राजन्वन्तः** सुराजवन्तः 'अच्छे राजा वाले । सुराज्ञि देशे राजन्वान् स्यात् ततोऽन्यत्र राजवान् इत्यमरः (२।१।१३) । अपि च—राजन्वान् सौराज्ये (पा० ८।२।१४) । **रमन्ते** मोदन्ते ।। ८ ।।

यस्योत्केतुभिरुन्मदद्विपकरव्याविद्धलोध्रद्रुमै-
रुद्धूतेन वनाध्वनि ध्वनिनदद्विन्ध्याद्रिरन्ध्रैर्बलैः ।
बालेयच्छविधूमरेण रजसा मन्दांशु संलक्ष्यते
पर्यावृत्तशिखण्डिचन्द्रक इव ध्यामं रवेर्मण्डलम् ॥९॥

अ०—यस्य जिसकी **उत्केतुभिः** ऊंची पताकाओं वाली **उन्मदद्विपकरव्याविद्धलोध्रद्रुमैः** मस्त हाथियों की सूंड़ों से उखाड़े गए लोध्रवृक्षों वाली **ध्वनिनदद्विन्ध्याद्रिरन्ध्रैः** ध्वनियों से गुञ्जित विन्ध्याचल की गुफाओं वाली **बलैः** सेनाओं

के द्वारा **वनाध्वनि** वन-मार्ग में **उद्धूतेन** उठाई हुई **बालेयच्छविधूमरेण** गधे के रंग के समान धूसर रंग वाली **रजसा** धूली से **मन्दांशु** मन्द किरणों वाला **रवेः मण्डलम्** सूर्य का मण्डल **पर्यावृत्तशिखण्डिचन्द्रक इव व्यायं** मोर के उल्टे चन्दोवे की तरह श्रीमा **संलक्ष्यते** दिखाई दे रहा है ॥९॥

टि०—**उत्केतुभिः** उद्गताः केतवः पताकाः येषां तैः। **उन्मदद्विप०** उन्मदानाम् उन्मत्तानां द्विपानां गजानां, द्वाभ्यां (करेण मुखेन च) पिबति इति द्विपः, करैः शुण्डाभिः व्याविद्धाः उत्पाटिताः लोध्रद्रुमाः यैः तैः। **बालेयच्छविधूमरेण** बालेयस्य गर्दभस्य छविः वर्णः सा इव धूमरः धूम्रवर्णः तेन। वालाः लोमानि अस्याः सन्ति इति वाला गर्दभी तस्याः अपत्यं पुमान् वालेयः गर्दभः, बवयोरभेदेन बालेयः। **मन्दांशु** मन्दाः अंशवः किरणाः यस्य तत्। **पर्यावृत्त०** पर्यावृत्तः यः शिखण्डेः मयूरस्य चन्द्रकः पिच्छवर्त्तिमेचकः ॥९॥

तस्य प्रभोर्वङ्शकृतां नृपाणां
पादाश्रयाद् विश्रुतपुण्यकीर्त्तिः।
भृत्यः स्वनैभृत्यजितारिषट्क
आसीद् वसीयान् किल षष्ठिदत्तः ॥१०॥
हिमवत इव गाङ्गस्तुङ्गनम्रः प्रवाहः
शशभृत इव रेवावारिराशिः प्रथीयान्।
परमभिगमनीयः शुद्धिमानन्ववायो
यत उदितगरिम्णस्तायते नैगमानाम् ॥११॥

अ०—**तस्य किल प्रभोः** उस राजा के **वंशकृतां नृपाणां** पूर्वज राजाओं के **पादाश्रयात्** चरणों में आश्रय के कारण **विश्रुतपुण्यकीर्त्तिः** विख्यात पुण्य और कीर्त्ति वाला **स्वनैभृत्यजितारिषिट्कः** अपने विनय से विजित छः शत्रुओं वाला **वसीयान्** बहुत धनवान् **षष्ठिदत्तः** (नाम) **भृत्यः आसीत्** षष्ठिदत्त नाम वाला सेवक था। ॥१०॥ **उदितगरिम्णः यतः** बढ़ी हुई गरिमा वाले जिससे **हिमवतः तुङ्गनम्रः गाङ्गः प्रवाहः इव** हिमालय से ऊंचे और नीचे गंगा के प्रवाह की तरह **शशभृतः प्रथीयान् रेवावारिराशिः इव** (और) चन्द्रमा से अति विपुल नर्मदा के जलसमूह की तरह **परमभिगमनीयः** अत्यन्त मेल के योग्य **शुद्धिमान्** विशुद्ध **नैगमानाम्** श्रेणीभूत व्यापारियों का **अन्ववायः** वंश **तायते** फैल रहा है ॥११॥

टि०—**वंशकृतां** पूर्वजानाम्। **विश्रुतपुण्यकीर्त्तिः** विश्रुतं विख्यातं पुण्यं कीर्त्तिः च यस्य। **स्वनैभृत्यजितारिषट्कः** स्वस्य नैभृत्येन विनयेन जितः अरीणां षट्कः सङ्घः येन सः। षट् परिमाणम् अस्य इति षट्कः सङ्घः। संख्यायाः संज्ञासंघसूत्रा-

व्ययनेषु (पा० ५।१।५८) इत्यनेन कन् प्रत्ययः। कामः क्रोधस्तथालोभः मद-मोहौ च मत्सरः इति अरिषट्कः। **वसीयान्** वसु+ईयस् (ईयसुन्), पुं०, प्रथमा, ए० ॥१०॥ **उदितगरिम्णः** उदितः उन्नतः गरिमा यस्य तस्य। **शशभृतः** शशं शशाङ्कं बिभर्ति इति शशभृत् चन्द्रः तस्य। रेवा (नर्मदा) की चन्द्रमा से उत्पत्ति प्रसिद्ध है। द्रष्टव्य—रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका इत्यमरः (१।६।३२)। **नैगमानाम्** निगमाख्यनिकायभूतानां श्रेणीभूतानां वणिजाम्। **अन्ववायः** अन्वयः वंशः ॥११॥

तस्यानुकूलः कुलजात् कलत्रात् सुतः प्रसूतो यशसां प्रसूतिः।
हरेरिवाङ्शं वशिनं वरार्हं वराहदासं यमुदाहरन्ति ॥१२॥

अ०—तस्य उसकी **कुलजात् कलत्रात्** (उच्च)कुलोत्पन्न पत्नी से **अनुकूलः** आज्ञाकारी **यशसां प्रसूतिः** यशों का उत्पत्तिस्थान **सुतः** पुत्र **प्रसूतः** उत्पन्न हुआ, **हेरः अंशम् इव** मानो विष्णु के अंश (=अवतार) **वशिनं** जितेन्द्रिय **वरार्हम्** (और) वरों को पाने के योग्य **यम्** जिसको **वराहदासम् उदाहरन्ति** वराहदास कहते हैं ॥१२॥

टि०—कुलजात् कुले उच्चकुले इत्यर्थः जायते कुलजम् तस्मात्। **अनुकूलः** अप्रतिकूलः आज्ञाकारी। **प्रसूतिः** उत्पत्तिस्थानम्। **प्रसूतः** √सू 'गर्भविमोचने'+त (क्त), प्रथमा, ए०। कर्त्रर्थे क्तः प्रत्ययः। **वरार्हम्** वरान् अर्हति इति वरार्हः तम् ॥१२॥

सुकृतिविषयितुङ्गं रूढमूलं धरायां
स्थितिमपगतभङ्गां स्थेयसीमादधानम्।
गुरुशिखरमिवाद्रेस्तत्कुलं स्वात्मभूत्या
रविरिव रविकीर्त्तिः सुप्रकाशं व्यधत्त ॥१३॥
बिभ्रता शुभ्रमभ्रङ्शि स्मार्तं वर्त्मोचितं सताम्।
न विसंब्वादिता येन कलावपि कुलीनता ॥१४॥

अ०—(तत्पश्चात्) शुभ्रम् उज्ज्वल **अभ्रंशि** अडिग **स्मार्तम्** स्मृतियों में उपदिष्ट **सताम् उचितं वर्त्म बिभ्रता** सज्जनों के उचित मार्ग का अनु-सरण करने वाले **येन** जिसके द्वारा **कलौ अपि** कलियुग में भी **कुलीनता न विसंवादिता** कुलीनता का उल्लङ्घन नहीं किया गया ॥१४॥ **रविः इव** सूर्य के समान **रविकीर्त्तिः** (वराहदास के पुत्र) रविकीर्त्ति ने **सुकृतिविषयितुङ्गं** पुण्यवान् और संसारी जनों से उच्चता को प्राप्त **धरायां रूढमूलं** पृथ्वी पर बद्धमूल **अप-गतभङ्गां स्थेयसीं स्थितिम् आदधानम्** न टूटने वाली दृढ़ स्थिति को धारण करने

वाले अद्रे: गुरुशिखरम् इव पर्वत के उच्च शिखर जैसे तत् कुलम् उस कुल को स्वात्मभूत्या अपने ऐश्वर्य से सुप्रकाशं व्यधत्त आलोकित कर दिया ।।१३।।

टि०—स्मार्तम् स्मृतिषु उपदिष्टम् । विसंवादिता विपर्यासिता उल्लङ्घिता । अभिलेख में विसंवादिता के स्थान पर विसंब्वादिता पाठ लेखक के प्रमाद के कारण है । रविकीर्तिः रविकीर्त्ति संभवतः वराहदास का पुत्र है । सुकृतिविषयितुङ्गम् सुकृतिभिः शुभकर्मवद्भिः विषयिभिः लोकयात्रादक्षैः च जनैः तुङ्गम् उन्नतम् स्वात्मभूत्या स्वस्य आत्मनः भूत्या ऐश्वर्येण । यहां स्वभूत्या अथवा आत्मभूत्या इतना ही पर्याप्त था । स्व और आत्मन् दोनों पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग सम्भवतः छन्द की अपेक्षा से किया गया है । व्यधत्त वि √धा, आत्म०, लुङ्, प्र०, पु०, ए० व० ।।१३-१४।।

धुतधीदीधितिध्वान्तान् हविर्भुज इवाध्वरान् ।
भानुगप्ता ततः साध्वी तनयांस्त्रीनजीजनत् ।।१५।।

अ०—हविर्भुजः अध्वरान् इव अग्नि से यज्ञों की तरह ततः उस(रविकीर्त्ति) से साध्वी भानुगुप्ता (उसकी) पतिव्रता (पत्नी) भानुगुप्ता ने धुतधीदीधितिध्वान्तान् बुद्धि की किरणों से नष्ट हुए (अज्ञान के) अन्धकार वाले त्रीन् तनयान् तीन पुत्रों को अजीजनत् जन्म दिया ।।१५।।

टि०—ततः तस्मात् रविकीर्त्तेः । धुतधीदीधितिध्वान्तान् धुतं कम्पितं विनाशितं धीदीधितिभिः ध्वान्तं तमः अज्ञानात्मकं यैः तान् । अजीजनत् √जन् 'प्रादुर्भावे' णिच्, लुङ्, प्र० पु०, ए० व० ।।१५।।

भगवद्दोष इत्यासीत् प्रथमः कार्यवर्त्मसु ।
आलम्बनं बान्धवानामन्धकानामिवोद्धवः ।।१६।।

अ०—अन्धकानाम् उद्धवः इव अन्धकों में उद्धव की तरह कार्यवर्त्मसु नीतिमार्गों में बान्धवानाम् आलम्बनम् बन्धुजनों का आश्रय भगवद्दोषः इति भगवद्दोष नाम वाला प्रथमः आसीत् (सब भाईयों में) ज्येष्ठ था ।।१६।।

टि०—प्रथमः मुख्यः ज्येष्ठः । कार्यवर्त्मसु कर्मणां पथिषु, नीतिमार्गेषु । अन्धकानामिवोद्धवः अन्धकेषु उद्धवः इव । यदुवंशी सात्वत भीम के दो पुत्र थे अन्धक और वृष्णि । दोनों के नाम पर अन्धक और वृष्णि इन दो कुलों का प्रादुर्भाव हुआ । कृष्ण वृष्णि-वंश में और उद्धव अंधक-वंश में उत्पन्न हुआ था । वह नीतिशास्त्र में कृष्ण की तरह अतीव निपुण था ।।१६।।

बहुनयविधिवेधा गह्वरेऽप्यर्थमार्गे
विदुर इव विदूरं प्रेक्षया प्रेक्षमाणः ।

वचनरचनबन्धे संस्कृतप्राकृते यः
कविभिरुदितरागं गीयते गीरभिज्ञः ॥१७॥

अ०—बहुनयविधिवेधाः अनेक नीति-विधानों में विधाता (सा), **गह्वरे अर्थमार्गे अपि** गम्भीर अर्थ-नीति में भी **विदुरः इव** विदुर की तरह **प्रेक्षया विदूरं प्रेक्षमाणः** प्रज्ञा से दूर तक देखने-वाला, **संस्कृतप्राकृते** संस्कृत और प्राकृत में **वचनरचनबन्धे** वाक्यों की रचना के प्रबन्ध में **गीरभिज्ञः** वाणी (के मर्म) को जानने वाला, **यः** जो **कविभिः** कवियों के द्वारा **उदितरागं** बढ़े हुए अनुराग के साथ **गीयते** गाया जा रहा है ॥१७॥

टि०—बहुनयविधिवेधाः बहुषु नयविधिषु वेधाः विधाता इव। **प्रेक्षया** प्रज्ञया। **संस्कृतप्राकृते** संस्कृतं च प्राकृतं च संस्कृतप्राकृतं तस्मिन्। **वचनरचनबन्धे** वचनानां वाक्यानां रचनस्य बन्धे प्रबन्धे विधाने इति यावत्। **गीरभिज्ञः** गिरं वाचम् अभिजानाति (उपपदतत्पु०)। **उदितरागम्** उदितः वृद्धि गतः रागः अनुरागः यथा स्यात् तथा। **गीयते** स्तूयते ॥१७॥

प्रणिधिदृगनुगन्त्रा यस्य बौद्धेन चाक्ष्णा
न निशि तनु दवीयो वास्त्यदृष्टं धरित्र्याम्।
पदमुदयि दधानोऽनन्तरं तस्य चाभूत्
स भयमभयदत्तो नाम चिन्वन् प्रजानाम् ॥१८॥

अ०—तस्य अनन्तरं च और उसके अनन्तर **उदयि पदं दधानः** ऊंचे पद को धारण करने वाला **प्रजानां भयं चिन्वन्** प्रजाओं के भय का निवारण करने वाला **सः अभयदत्तः नाम अभूत्** वह (दूसरा भाई) अभयदत्त नाम वाला हुआ, **प्रणिधिदृगनुगन्त्रा** गुप्तचर रूपी आंख का अनुगमन करने वाली **बौद्धेन च यस्य अक्ष्णा** जिसकी बुद्धि की आंख के द्वारा **धरित्र्यां** धरती पर **निशि** रात्रि में **तनु** सूक्ष्म **दवीयः वा** अथवा बहुत दूर स्थित (कुछ भी) **अदृष्टं न अस्ति** अदृष्ट नहीं है ॥१८॥

टि०—उदयि उदयः अस्य अस्ति इति, उन्नतम् उच्चम्। **चिन्वन्** हरन् निवारयन्। **प्रणिधिदृगनुगन्त्रा** प्रणिधयः गुप्तचरा एव दृक् चक्षुः ताम् अनुगन्त्रा अनुगामिना। तनु सूक्ष्मम्। **दवीयः** अतिदूरे स्थितम्। दूर+ईयस् **(ईयसुन्)** नपुं०, प्रथमा, ए० ॥१८॥

विन्ध्यस्यावन्ध्यकर्मा शिखरतटपतत्पाण्डुरेवाम्बुराशेर्
गोलाङ्गूलैः सहेलं प्लुतिनमिततरोः पारियात्रस्य चाद्रेः।
आसिन्धोरन्तरालं निजशुचिसचिवाध्यासितानेकदेशं
राजस्थानीयवृत्त्या सुरगुरुरिव यो वर्णिनां भूतयेऽपात् ॥१९॥

अ०—अवन्ध्यकर्मा यः जिस सफल कर्मों वाले ने **शिखरतटपतत्पाण्डुरेवाम्बुराशेः विन्ध्यस्य** शिखरतटों से गिरते हुए नर्मदा नदी के शुभ्र जल की राशि वाले विन्ध्यपर्वत के, **गोलाङ्गूलैः** और लंगूरों के द्वारा **सहेलं** क्रीडापूर्वक **प्लुतिनमिततरोः पारियात्रस्य अद्रेः च** कूद-फांद से झुकाए हुए वृक्षों वाले पारियात्र पर्वत के (मध्य) **निजशुचिसचिवाध्यासितानेकदेशम्** अपने ईमानदार सचिवों से अधिष्ठित अनेक प्रदेशों वाले **आ सिन्धोः अन्तरालम्** सिन्धु नदी तक (विस्तृत) अन्तराल की **सुरगुरुः इव** बृहस्पति की तरह **वर्ण्णिनाम् भूतये** (चारों) वर्ण वालों के कल्याण के लिये **राजस्थानीयवृत्त्या** राजा के स्थानापन्न (=प्रतिनिधि) की हैसियत से **अपात्** रक्षा की ॥१९॥

टि०—अवन्ध्यकर्मा अवन्ध्यानि सफलानि कर्माणि कार्याणि यस्य सः। **शिखरतटपतत्पाण्डुरेवाम्बुराशेः** शिखरतटेभ्यः पततां पाण्डुवर्णानां रेवायाः नर्मदायाः अम्बुनां जलानां राशयो यस्मिन् तस्य। **सहेलं** लीलया। **प्लुतिनमिततरोः** प्लुतिभिः नमिताः तरवः यस्मिन् तस्य। **आ सिन्धोः** सिन्धु नद तक। पारियात्र **पर्वत** विन्ध्य के पश्चिम में अरावलि का एक भाग है। विन्ध्य और पारियात्र के अन्तराल के पश्चिम में सिन्धु नद है। इस अन्तराल को यदि और आगे बढ़ा दिया जाए तो सिन्धु से पश्चिमी सागर (अरब-सागर) भी ग्रहण किया जा सकता है। **निजशुचि०** निजैः शुचिभिः सच्चरितैः सचिवैः राज्यकार्यसहायैः मन्त्र्यादिभिः अध्यासिताः अधिष्ठिताः अनेके देशाः यस्मिन् तत्। **सुरगुरुः** सुराणां गुरुः बृहस्पतिः। **वर्णिनाम्** वर्णो एषाम् अस्ति इति वर्णिनः तेषाम्, ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणाम्। **भूतये** कल्याणाय। **राजस्थानीयवृत्त्या** राज्ञः स्थानीयः स्थानापन्नः स्थानाध्यक्षः प्रतिनिधिः (Viceroy) इति यावत्, तस्य वृत्त्या वर्तनेन। **प्रजापालनार्थम् उद्वहति रक्षयति च स राजस्थानीयः** (क्षेमेन्द्र—लोकप्रकाशः) ॥१९॥

विहितसकलवर्णासङ्करं शान्तडिम्बं
कृत इव कृतमेतद्ये न राज्यं निराधि।
स धुरमयमिदानीं दोषकुम्भस्य सूनुर्
गुरु वहति तदूढां धर्मतो धर्मदोषः ॥२०॥

अ०—येन जिसके द्वारा **एतद् राज्यम्** यह राज्य **कृते इव** सत्ययुग की तरह **विहितसकलवर्णासङ्करम्** की हुई सब वर्णों की असंकरता वाला, **शान्तडिम्बं** शान्त उपद्रवों वाला, **निराधि (च)** और आधियों से रहित बना दिया गया है, **दोषकुम्भस्य सूनुः** दोषकुम्भ का पुत्र **सः अयम् धर्मदोषः** वह यह धर्मदोष **इदानीम्** इस समय **तदूढां गुरुं धुरं** उस (अभयदत्त) के द्वारा वहन किये हुए (राज्यकार्य के) भारी जुए को **धर्मतः वहति** धर्मपूर्वक वहन कर रहा है ॥२०॥

टि०—**कृते** कृतयुगे सत्ययुगे। **विहितसकलवर्णासंकरम्** विहितः सकलानां सर्वेषां वर्णानाम् असंकरः यस्मिन् तत्। **शान्तडिम्बम्** शान्ताः डिम्बाः विप्लवाः यस्मिन् तत्। **निराधि** निर्गता आधिः मानसी व्यथा यस्मात् तत्। **दोषकुम्भस्य** अभयदत्तस्य अनुजस्य दोषकुम्भनाम्नः। **तदूढां** तेन अभयदत्तेन ऊढाम्। **गुरु** गुरुम् इत्यस्य स्थाने गुरु इत्ययं पाठः प्रामादिकः ॥२०॥

स्वसुखमनतिवाञ्छन् दुर्गमेऽध्वन्यसङ्गां
धुरमतिगुरुभारां यो दधद् भर्तुरर्थे।
वहति नृपतिवेषं केवलं लक्ष्ममात्रं
वलिनमिव विलम्बं कम्बलं बाहुलेयः ॥२१॥

अ०—यः जो **भर्तुः अर्थे** स्वामी (यशोधर्मा) के लिये **स्वसुखम्** अपने सुख को **अनतिवाञ्छन्** बिल्कुल न चाहता हुआ, **दुर्गमे अध्वनि** विषम मार्ग में **असङ्गाम् अतिगुरुभारां धुरं दधत्** बिना किसी संगी के अत्यधिक बोझ वाले (राज्यकार्य) के जुए को धारण करता हुआ **नृपतिवेषं** राजा के वेष को, **वलिनं विलम्बं कम्बलं वाहुलेयः इव** वलों वाले लटकते हुए गल-कम्बल को बैल की तरह, **केवलं लक्ष्ममात्रं** केवल चिह्नमात्र के लिये **वहति** धारण कर रहा है ॥२१॥

टि०—**दुर्गमे** विषमे **अध्वनि** मार्गे। **असङ्गाम्** असहायाम्। यां वोढुं कोऽपि सहायो नास्ति, ताम्। **वलिनं** वलिमन्तं 'सिलवटों वाले'। **विलम्बं** लम्बमानम्। **कम्बलं** गलकम्बलं सास्नाम्। **बाहुलेयः** बहुला गौः, तस्याः अपत्यं पुमान् बाहुलेयः 'बहला, बहड़ा, बैल' इति भाषायाम् ॥२१॥

उपहितहितरक्षामण्डनो जातिरत्नैर्
भुज इव पृथुलांसस्तस्य दक्षः कनीयान्।
महदिदमुदपानं खातयामास बिभ्रच्
छ्रुतिहृदयनितान्तानन्दि निर्दोषनाम ॥२२॥

अ०—**उपहितहितरक्षामण्डनः** सौंपी गई हितों की रक्षा रूपी मण्डन वाले **जातिरत्नैः (मण्डितः) भुजः इव** सर्वोत्कृष्ट रत्नों से मण्डित भुजा जैसे, **पृथुलांसः** चौड़े कंधों वाले **निर्दोषनाम बिभ्रत्** निर्दोष (इस दूसरे) नाम को धारण करने वाले **तस्य कनीयान् दक्षः** उस (धर्मदोष) के छोटे भाई दक्ष ने **छ्रुतिहृदयनितान्तानन्दि** कानों और हृदय को नितान्त आनन्द देने वाले **महद् इदम् उदपानम्** इस महान् कुएँ को **खातयामास** खुदवाया ॥२२॥

टि०—**उपहितहितरक्षामण्डनः** उपहिता या हितानां रक्षा सा एव मण्डनं यस्य सः। **जातिरत्नैः** स्वजातौ उत्तमैः रत्नैः इत्यर्थः। **पृथुलांसः** पृथुलौ अंसौ

यस्य सः। खातयामास खातं गर्तं तस्मात् नामधातुः। खानयामास इत्यर्थः ॥२२॥

सुखाश्रेयच्छायं परिणतिहितस्वादुफलदं
गजेन्द्रेणारुग्णं द्रुममिव कृतान्तेन बलिना।
पितृव्यं प्रोद्दिश्य प्रियमभयदत्तं पृथुधिया
प्रथीयस्तेनेदं कुशलमिह कर्मोपरचितम् ॥२३॥

अ०—**सुखाश्रेयच्छायं** सुख से आश्रय के योग्य छाया वाले **परिणतिहित-स्वादुफलदं** पकने पर हितकारी और स्वादु फल देने वाले **गजेन्द्रेण आरुग्णं द्रुमम् इव** गजराज के द्वारा तोड़ गिराए वृक्ष की तरह **बलिना कृतान्तेन (गृहीतम्)** बलशाली मृत्यु के द्वारा वश में किये हुए **प्रियं पितृव्यम् अभयदत्तम्** प्यारे चाचा अभयदत्त को **प्रोद्दिश्य** उद्देश्य बनाकर **पृथुधिया तेन** उस विपुलमति (दक्ष) के द्वारा **इह** इस लोक में **प्रथीयः कुशलम् इदम्** यह विशाल (और) कौशलपूर्ण **कर्म** (कूप-निर्माण)कार्य **उपरचितम्** सम्पन्न किया गया है ॥२३॥

टि०—**सुखाश्रेयच्छायम्** सुखेन आश्रेया आश्रयितुं योग्या छाया यस्य तम्। **परिणतिहितस्वादुफलदम्** परिणतौ परिणामे पक्वावस्थायां हितानि हितकराणि स्वादूनि मधुराणि च फलानि ददाति इति तम्। **आरुग्णम्** आ समन्तात् रुग्णं छिन्नम्। √रुज्+त(क्त), पुं०, द्वितीया, ए०। **प्रोद्दिश्य** उद्दिश्य अधिकृत्य, तस्य स्मृतौ इत्यर्थः। **कुशलं** कौशलपूर्णम् ॥२३॥

पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवतिसहितेषु।
मालवगणस्थितिवशात् कालज्ञानाय लिखितेषु ॥२४॥

यस्मिन् काले कलमृदुगिरां कोकिलानां प्रलापा
भिन्दन्तीव स्मरशरनिभाः प्रोषितानां मनांसि।
भृङ्गालीनां ध्वनिरनुवनं भारमन्द्रश्च यस्मि-
न्नाधूतज्यं धनुरिव नदच्छ्रूयते पुष्पकेतोः ॥२५॥

प्रियतमकुपितानां रामयन् बद्धरागं
किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनाम्।
उपनयति नभस्वान् मानभङ्गाय यस्मिन्
कुसुमसमयमासे तत्र निर्मापितोऽयम् ॥२६॥

अ०—**मालवगणस्थितिवशात्** मालव गण की (काल-)स्थिति के अनुसार **कालज्ञानाय लिखितेषु** काल को जानने के लिये लिखे गए **शरदाम् एकान्नवति-**

सहितेषु पञ्चसु यातेषु एक कम नब्बे सहित पांच सौ (५८९) शरत्कालों के बीत जाने पर ॥ २४ ॥ **यस्मिन् काले** जिस समय में **कलमृदुगिरां कोकिलानाम्** मीठी और कोमल आवाज़ों वाली कोयलों के **स्मरशरनिभाः प्रलापाः** कामदेव के बाणों के समान आलाप **प्रोषितानां मनांसि** प्रवास में गए जनों के मनों का **भिन्दन्ति इव** भेदन सा करते हैं, **यस्मिन् भृङ्गालीनां भारमन्द्रः ध्वनिः च** और जिस (काल) में भौंरों की पङ्क्तियों का (मधु-)भार के कारण गम्भीर गुंजन **अनुवनम्** प्रत्येक वन में **पुष्पकेतोः आधूतज्यं धनुः इव** कामदेव के सब ओर से कम्पित डोरी वाले धनुष की तरह **नदत् श्रूयते** गूंजता हुआ सुनाई देता है ॥ २५ ॥ **यस्मिन्** (और) जिस (काल) में **नभस्वान्** वायु **प्रियतमकुपितानां मानिनीनां** प्रियतम से रूठी हुई मानिनी स्त्रियों के **बद्धरागं किसलयम् इव मुग्धं मानसं** पक्के अनुराग वाले नव पल्लव जैसे मुग्ध मन को **रामयन्** बहलाता हुआ **मानभङ्गाय उपनयति** मान को छोड़ने के लिये (उन्हें पतियों के पास) ले जाता है **तत्र कुसुमसमयमासे** उस वसन्त मास में **अयं निर्मापितः** यह (कूआँ) बनवाया गया ॥ २६ ॥

टि०—**शरदां** शरत्कालानाम्, संवत्सराणाम् इत्यर्थः। संस्कृत में शरद्, वर्ष, हिमा, समा आदि ऋतु-वाचक शब्द संवत्सर वाची हो गए हैं।।२४।। **भृङ्गालीनाम्** भृङ्गाणाम् भ्रमराणाम् अलीनां पङ्क्तीनाम्। **भारमन्द्रः** मुखगतपुष्पमधुभारेण मन्द्रः गम्भीरः। **आधूतज्यम्** आ समन्तात् धूता कम्पिता ज्या मौर्वी यस्य तत्।।२५।। **प्रियतमकुपितानाम्** प्रियतमेभ्यः कुपितानाम् क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः (पा० १.४.३७) इति चतुर्थी। **रामयन्** प्रीणयन्, **रमयन्** इत्यस्य स्थाने **रामयन्** इति प्रयोगः। भ्वादिगण के अन्तर्गत घटादिगण में अमन्त धातुओं की मित् संज्ञा होने से **मितां ह्रस्वः** (पा० ६.४.९२) से रमयन् रूप बनता है। √रम्+अ(शप्)+अत्(शतृ), प्रथमा, ए० व० ।।२६।।

यावत् तुङ्गैरुदन्वान् किरणसमुदयं सङ्गकान्तं तरङ्गै-
रालिङ्गन्निन्दुबिम्बं गुरुभिरिव भुजैः संविधत्ते सुहृत्ताम्।
बिभ्रत् सौधान्तलेखावलयपरिगतिं मुण्डमालामिवायं
सत्कूपस्तावदास्ताममृतसमंरसस्वच्छविष्यन्दिताम्बुः ।।२७।।

अ०—**यावत्** जब तक **उदन्वान्** समुद्र **तुङ्गैः तरङ्गैः** ऊंची तरंगों से —**गुरुभिः भुजैः इव** मानो महान् भुजाओं से—**किरणसमुदयं** किरणों के समूह वाले, **सङ्गकान्तं** (समुद्र के) संग से कमनीय, **इन्दुबिम्बम्** इन्दु के बिम्ब को **आलिङ्गन्** आलिगन करते हुए **सुहृत्तां विधत्ते** मित्रता करता रहेगा **तावत्** तब तक **मुण्डमालाम् इव सौधान्तलेखावलयपरिगतिं बिभ्रत्** मुण्डों की माला की तरह (कूएँ के) महल के प्रान्तभागों पर (ईंटों की) पंक्तियों से बने

(जल-)कुण्डों के घेरे को धारण करता हुआ, अमृतसमरसस्वच्छविष्यन्दिताम्बु: अमृत के समान स्वादु, स्वच्छ और बहते हुए जल वाला अयं सत्कूप: आस्ताम् यह उत्तम कुआं विद्यमान रहे ॥२७॥

टि०—किरणसमुदयम् किरणानां समुदय: समूह: यस्य तम्। समौ समुदयसमुदायौ। **सङ्गकान्तम्** सङ्गेन कान्तं कमनीयम्। **इन्दुबिम्बम्** इन्दो: बिम्बम्। **सुहृत्ताम्** सौहार्दम् मैत्रीम्। **सौधान्तलेखावलयपरिगतिम्** सौधस्य कूपभवनस्य अन्तेषु प्रान्तभागेषु (इष्टकानाम्) लेखाभि: पङ्क्तिभि: (निर्मितानि) वलयानि जलकुण्डानि तेषां परिगतिम्। **बिभ्रत्** दधत्। **अमृतसम०** अमृतेन समं रसं रसवत् स्वादु स्वच्छं निर्मलं विष्यन्दितं प्रवहत् अम्बु जलं यस्य स:। **आस्ताम्** विद्यताम् ॥२७॥

धीमां दक्षो दक्षिण: सत्यसन्धो
ह्रीमांच्छूरो वृद्धसेवी कृतज्ञ:।
बद्धोत्साह: स्वामिकार्येष्वखेदी
निर्दोषोऽयं पातु धर्मं चिराय ॥२८॥

उत्कीर्णा गोविन्देन।

अ०—धीमान् बुद्धिमान्, **दक्ष:** चतुर, **दक्षिण:** उदार, **सत्यसन्ध:** सच्ची प्रतिज्ञा वाला, **ह्रीमान्** लज्जावान्, **शूर:** शूरवीर, **वृद्धसेवी** बड़ों की सेवा करने वाला, **कृतज्ञ:** उपकार को मानने वाला, **बद्धोत्साह:** बंधे हुए उत्साह वाला **स्वामिकार्येषु अखेदी** स्वामी के कार्यों में थकावट न मानने वाला, **निर्दोष:** (और) निर्दोष **अयं** यह (दक्ष) **चिराय** चिरकाल तक **धर्मं पातु** धर्म की रक्षा करे ॥२८॥

उत्कीर्णा उत्कीर्ण की गई (**प्रशस्तिर् इयम्** यह प्रशस्ति) **गोविन्देन** गोविन्द के द्वारा।

टि०—धीमां अभिलेख उत्कीर्णस्यास्य पाठस्य स्थाने धीमान् इति पाठ: साधु:। **सत्यसन्ध:** सत्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य स:। **वृद्धसेवी** वृद्धान् सेवते इति। **कृतज्ञ:** कृतम् उपकारं जानाति न विस्मरति इति 'अहसान को न भूलने वाला'। **बद्धोत्साह: बद्ध:** अखिलीकृत: उत्साह: अध्यवसाय: यस्य स:। **अखेदी** खेद: श्रम: अस्य अस्तीति खेदी, न खेदी अखेदी। **उत्कीर्णा** प्रशस्तिरियम् इति शेष: ॥२८॥

ऐतिहासिक महत्त्व

यशोधर्मराज कालीन **मन्दसौर-कूपशिलालेख** एक कूएं के निर्माण की घटना की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये लिखा गया। इससे ऐतिहासिक महत्त्व

के दो तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—(१) सम्राट् यशोधर्मा का शासन और (२) पश्चिमी प्रान्त के उस वणिक्-कुल की वंशावलि, जिसने कुछ समय के लिये राज-स्थानीय (राज्यपाल) के पद का भार वहन किया।

इस अभिलेख में यशोधर्मा का दूसरा नाम विष्णुवर्धन भी दिया गया है। फ्लीट का विचार था कि यशोधर्मा और विष्णुवर्धन दो भिन्न व्यक्तियों के नाम हैं, और कि विष्णुवर्धन यशोधर्मा का सामन्त था। उसने ये विचार इस आधार पर व्यक्त किये थे कि यहाँ यशोधर्मा को जनेन्द्र (जन अर्थात् कबीले का स्वामी) और विष्णुवर्धन को नराधिपति (नरों का राजा) कहा गया है। किन्तु दोनों शब्दों का अर्थ 'राजा' ही है, और जैसा कि प्रसंग से स्पष्ट है ये दोनों शब्द अनुप्रास अलंकार की दृष्टि से प्रयुक्त किये गए हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि यशोधर्मा के **मन्दसौर प्रस्तर-स्तम्भ-अभिलेख** में उसे सम्राट् कहा गया है, जो कि इस अभिलेख के विष्णुवर्धन के राजाधिराज-परमेश्वर विरुद के समान है। श्री विष्णुवर्धन नराधिपति के साथ **स एव** का प्रयोग (पद्य ६), उसका विरुद राजाधिराज परमेश्वर (७), और ये तथ्य कि मन्दसौर स्पष्ट रूप से यशोधर्मा की राजधानी थी और अभिलेख का लेखक गोविन्दराज यशोधर्मा का ही सेवक था (यशोधर्मा का **प्रस्तर-स्तम्भ अभिलेख**-९) इतने सशक्त प्रमाण हैं जो यशोधर्मा और विष्णुवर्धन को एक ही व्यक्ति मानने के लिये बाध्य करते हैं। **पुनश्च** से किसी अन्य व्यक्ति का वर्णन प्रारम्भ नहीं होता, अपितु उसी के चरित्र पर और अधिक प्रकाश डालने के लिये प्रयुक्त किया गया है। वह शैवमतावलम्बी था, जबकि इस वंश के पूर्ववर्ती राजा विष्णु-धर्मावलम्बी थे।[१]

यशोधर्मा युद्धों में विजय प्राप्त करने वाला एक वीर योद्धा था। उसके शरीर पर ज़ख्मों के अनेक निशान थे। उसने औलिकर नाम वाले अपने महान् वंश को ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुंचा दिया था (६)। इससे विदित होता है कि यशोधर्मा उसी औलिकर वंश से सम्बन्धित था, जिससे नरवर्मा (**बिहर्कोत्र अभिलेख**) और उसके वंशज।[२] उसने पूर्व और पश्चिम के अनेक महान् राजाओं को साम और युद्ध के द्वारा वश में करके राजाधिराज-परमेश्वर का दुर्लभ विरुद धारण किया था (७)। यहां यह स्पष्ट नहीं है कि ये पूर्व और पश्चिम के राजा कौन थे और उसने उनको अधीन करके अपने राज्य की सीमाओं को पूर्व और पश्चिम में कहां तक बढ़ाया था। यशोधर्मा के दूसरे लेख **मन्दसौर-प्रस्तर-स्तम्भ-अभिलेख** से इसपर कुछ और अधिक प्रकाश पड़ता है। वहाँ कहा गया

---

१. Sircar, D. C., **Select Inscriptions, I.**, p. 411, f. n. 1.
२. ibid., p. 413, f. n. 3.

है कि यशोधर्मा उन देशों पर भी शासन करता था जिनपर प्रतापी गुप्तों ने भी शासन नहीं किया और जो कभी हूणों के शासन में भी नहीं रहे (४)। इससे पता चलता है कि वह गुप्तों और हूणों के पश्चात् मालव देश का सम्राट् बना। ऐसा प्रतीत होता है कि स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्तों की शक्ति कमजोर हो जाने पर यशोधर्मा ने भारत के एक भाग को उनसे छीन लिया होगा। उसी अभिलेख के अनुसार उनके राज्य की सीमाएं उत्तरपूर्व में ब्रह्मपुत्र तक, दक्षिण में महेन्द्र-पर्वत तक, पश्चिम में पश्चिम-सागर तक और उत्तर में हिमालय तक पहुंची हुई थीं। डा. दिनेशचन्द्र सरकार का मत है कि ये पारम्परिक चक्रवर्ती क्षेत्र की सीमाएं हैं। यह वर्णन एक परम्परागत स्तुति जैसा है और इसे पूर्णतया ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नहीं माना जा सकता। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि यशोधर्मा इतने बड़े भूभाग का शासक था।[1] सम्भवत: पूर्व और दक्षिण भारत का बहुत सा भाग उसके अधिकार में नहीं था। उसने हिमालय में शासन करने वाले हूण शासक मिहिरकुल को भी परास्त किया था (६)। कल्हण ने राजतरङ्गिणी में मिहिरकुल को कश्मीर का राजा बताया है। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार पश्चिमी पंजाब के साकल (सियालकोट) नगर में उसकी राजधानी थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसका राज्य कम से कम कश्मीर से मालव तक फैला हुआ था, जहां से उसे यशोधर्मा ने निकाल कर बाहर किया। इससे स्पष्ट है कि यशोधर्मा ने पूर्व की ओर गुप्तों से और उत्तर-पश्चिम की ओर हूणों से उनके राज्य के भागों को छीनकर अपने राज्य की स्थापना की थी। अपने भुजबल से जीते हुए उसके अधीन सभी देश सुखी और समृद्ध थे, अत: उन्हें राजन्वान् कहा गया है।

इस अभिलेख में पश्चिम देश के एक वणिक्-कुल की वंशावलि भी दी गई है, जिसके कुछ योग्य व्यक्तियों ने पश्चिमी देश के राजस्थानीय (=राज्यपाल) का कार्यभार सफलतापूर्वक वहन किया। नैगमों के इस गौरवशाली वंश के पूर्वपुरुष का नाम षष्ठिदत्त बताया गया है। उसका आज्ञाकारी और यशस्वी पुत्र वराहदास था। उसका सन्मार्ग पर चलने वाला और कुलीनता की रक्षा करने वाला रविकीर्त्ति नामक पुत्र हुआ। उसके, भानुगुप्ता नामक पत्नी से, तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ पुत्र का नाम भगवद्दोष था। वह उद्धव और विदुर के समान नीतिनिपुण और संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में काव्यरचना में प्रवीण था। दूसरा पुत्र अभयदत्त था जो पश्चिमी प्रान्त के राजस्थानीय पद पर आरूढ हुआ। वह विन्ध्य और पारियात्र के मध्वर्ती अरबसागर तक विस्तृत भूभाग

१. ibid., p. 419, f. n. 3.

का राजस्थानीय (प्रान्तीय शासक) था। तीसरा पुत्र दोषकुम्भ था। उसके दो पुत्र थे—धर्मदोष और दक्ष। दक्ष का दूसरा नाम निर्दोष भी था। धर्मदोष ने अपने चाचा अभयदत्त के पश्चात् राजस्थानीय पद के भार को वहन किया। उसके अनुज दक्ष ने ५८९ मालव-सम्वत् (५३२ ई०) के वसन्त ऋतु में अपने चाचा अभयदत्त की पुण्य-स्मृति में इस विशाल कूएं का निर्माण कराया। नैगमों के कुल का वंशवृक्ष इस प्रकार समझना चाहिए :—

षष्ठिदत्त:
|
वराहदास:
|
रविकीर्त्ति:—भानुगुप्ता
|
भगवद्दोष: | अभयदत्त: | दोषकुम्भ:
|
धर्मदोष: | दक्ष: (निर्दोष:) (कूपनिर्माता)

साहित्यिक मूल्यांकन

यशोधर्मा का मन्दसौर-कूपशिलालेख २८ पद्यों का अभिलेख है। इसमें लेखक का नाम गोविन्द दिया है, किन्तु इसमें कवि के नाम का उल्लेख नहीं है। कवि ने इस छोटी सी काव्यकृति में काव्य के सभी सौन्दर्य-गुणों के निर्वाह का सफल प्रयास किया है। आदि में आशीर्वचनात्मक मंगलाचरण के द्वारा भगवान् शिव की स्तुति के साथ पाठकों के कल्याण की कामना की गई है। तत्पश्चात् कूपनिर्माण की सुसंगति के लिये जलों के स्वामी समुद्र से कूप-निर्माता के यश की चिरकाल तक रक्षा की कामना की गई है। उसके बाद समास-पद्धति से सम्राट् यशोधर्मा और उसके सेवक षष्ठिदत्त की वंशपरम्परा में राजस्थानीय पद को सुशोभित करने वाले अभयदत्त, धर्मदोष तथा कूप-निर्माता दक्षके साथ कुछ अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों का भी नपे तुले शब्दो में चरित्र-चित्रण किया है। अन्त की ओर अभिलेख के सम्वत्-निर्देश के साथ दो ही पद्यों में वसन्त ऋतु का सजीव वर्णन किया गया है। अन्त में कूप और उसके निर्माता दक्ष के यश के चिर-

स्थायित्व की कामना की अभिव्यक्ति में भी कवि ने अपने काव्य-कौशल का परिचय दिया है।

२८ पद्यों में कुल मिलाकर १२ छन्दों का प्रयोग किया गया है। कवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द मालिनी है, जिसमें १० पद्यों की रचना की गई है। इसके अतिरिक्त अनुष्टुभ् और स्रग्धरा में तीन-तीन, शिखरिणी, उपजाति और वसन्ततिलका में दो-दो और पुष्पिताग्रा, शार्दूलविक्रीडित, इन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, शालिनी और आर्या में एक-एक पद्य की रचना हुई है। इससे पता चलता है कि कवि छोटे-बड़े सभी प्रकार के छन्दों के प्रयोग में सिद्धहस्त है। किन्तु इस छन्दोवैविध्य से एक दोष यह उत्पन्न हो गया है कि इससे काव्य के प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है। प्रवाह के बनाए रखने के लिये यह अच्छा होता यदि कवि एक या दो छन्दों के प्रयोग तक ही अपने आप को सीमित रखता।

कवि ने मधुर, कोमल, कान्त पदावलि से युक्त और छोटे-छोटे समासों वाली वैदर्भी रीति का अनुसरण किया है। भाषा और भावों को समझने में किसी प्रकार की कठिनाई प्रतीत नहीं होती। लम्बे समासों का नितान्त अभाव है। प्रयत्नपूर्वक ढूंढने पर ही **स्थितिलयसमुत्पत्तिविधिषु, फणिमणिगुरुभाराक्रान्तिदूरावनम्रम्, कररभसहृतोद्यानचूताङ्कुराग्राः** जैसे कुछ लम्बे समास मिल सकते हैं। कवि भावों के अनुकूल पदावलि के प्रयोग में सिद्ध-हस्त है। उदाहरण के लिये सेनाओं के शोर से भरी विन्ध्य-पर्वत की गुफाओं का वर्णन कवि ने इन शब्दों से किया है—**ध्वनिनदद्विन्ध्याद्रिरन्ध्रैः**। विन्ध्य-पर्वत के शिखर तट से गिरते हुए रेवा नदी के जल-समूह की ध्वनि कवि द्वारा प्रयुक्त इस पदावलि में ही सुनाई देती है—**शिखरतटपतत्पाण्डुरेवाम्बुराशेः**। इस प्रकार के उदाहरणों का इस लघु कृति में अभाव नहीं है।

कवि ने इस कृति में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास ही विशेष है। इस छोटी सी कृति में आदि से अन्त तक अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है। अनुप्रास के इन प्रयोगों के द्वारा इस कृति में एक अनुपम चमत्कार उत्पन्न हो गया है। **स जयति जगतां पतिः, स्मितरवगीतिषु यस्य दन्तकान्तिः, आजौ जितौ विजयते जगतीं, बिभ्रता शुभमभ्रंशि, रेवावारिराशिः, क्लेशभङ्गं भुजङ्गः** आदि वर्णानुप्रास के अच्छे उदाहरण हैं। **बहुनयविधिवेधाः, विदुर इव विदूरं प्रेक्षया प्रेक्षमाणः, वचनरचनबन्धे संस्कृतप्राकृते, विन्ध्यस्यावन्ध्यकर्मा, वलिनमिव विलम्बं कम्बलं बाहुलेयः, पृथुधिया प्रथीयस्, यस्मिन् काले कलमृदुगिरां कोकिलानां प्रलापाः, सृजतु भवसृजः, यशांसि पायात् पयसां विधाता, तरुणतरुलतावद्, वराहं वराहदासम्, उद्धूतेन वनाध्वनि ध्वनिनदद्विन्ध्याद्रिरन्ध्रैः, तस्यानु-**

कूतः कुलजात् कलजात् सुतः प्रसूतो यशसां प्रसूतिः आदि अनेक उदाहरण छेकानुप्रास की छटा प्रस्तुत करते हैं । **श्रुतिहृदयनितान्तानन्दि निर्दोषनाम, धुतधीवीधितिध्वान्तान्** आदि श्रुत्यनुप्रास के उत्तम उदाहरण हैं । **भयमभयवत्तः, धर्मतो धर्मदोषः** लाटानुप्रास के उदाहरण हैं । पद्य २४ में दोनों श्लोकार्द्धों के अन्त में **सहितेषु** और **लिखितेषु** का प्रयोग करके कवि ने अन्त्यानुप्रास का उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । **उपहितहितरक्षामण्डनः** और **कृत इव कृतमेतद्** यमक के सुन्दर उदाहरण हैं । अन्तिम उदाहरण में यमक उपमालंकार से दब सा गया है ।

अर्थालङ्करों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का ही कवि ने प्रयोग किया है। वस्तुतः यहां उपमालङ्कार का प्राधान्य है । यह अलंकार दूसरे अलंकारों पर छा सा गया है। दूसरे अलंकार उपमालङ्कार की ही सेवा-शुश्रूषा सी करते दीख पड़ते है। उपमालङ्कार के कुछ सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित हैं--'मुस्कान, भाषण और गान में इस जगत् को तिरोहित और प्रकट करने वाली भगवान् शिव की दन्तकान्ति' की उपमा रात्रि में बिजलियों की लसलसाती द्युति के साथ दी गई है (**स्मित-रव-गीतिषु यस्य दन्तकान्तिः । द्युतिरिव तडितां निशि स्फुरन्ती तिरयति च स्फुटयत्यदश्च विश्वम्**) । यशोधर्मा ने प्रमदवन की तरह शत्रुसेना का विगाहन किया (**प्रमदवनमिवान्तः शत्रुसैन्यं विगाह्य**) और वीरों की कीर्तियों को तरुण वृक्षों की शाखाओं की तरह झुका दिया (**तरुणतरुलतावद् वीरकीर्त्तीर्विनाम्य**) । सेना के द्वारा उठाई गई गधे के वर्णवाली धूसर धूली से मन्द किरणों वाला सूर्य का मण्डल मोर के उलटे चन्दोवे की तरह धुंधला दिखाई दे रहा है (**बालेयच्छविधूमरेण रजसा मन्दांशु संलक्ष्यते पर्यावृत्तशिखण्डिचन्द्रक इव ध्यामं रवेर्मण्डलम्**)। श्रेणीभूत व्यापारियों के वंश के प्रसार की उपमा हिमालय से निकलने वाले उच्चावच गंगा के प्रवाह और चन्द्र से उत्पन्न होने वाले अति विपुल रेवा के जलसमूह से दी गई है (११) । अद्रि के उच्च शिखर जैसे उस कुल को रवि के समान रविकीर्त्ति ने अपने ऐश्वर्य से आलोकित किया (**गुरुशिखरमिवाद्रेस्तत्कुलं स्वात्मभूत्या रविरिव रविकीर्त्तिः सुप्रकाशं व्यधत्त**—१३) । धर्मदोष स्वामी यशोधर्मा के लिये अपने सुख की बिलकुल इच्छा न करता हुआ विषम मार्ग में भी बिना किसी संगी के अत्यधिक बोझ वाली राज्यकार्य की धुरा को धारण करता हुआ राजा के वेष को केवल चिह्न मात्र के लिये इस प्रकार धारण कर रहा है जिस प्रकार बैल बलों वाले लटकते हुए गलकम्बल को। कूएं के महल के प्रान्त भागों पर ईंटों की पंक्तियों से बने जलकुण्डों के घेरे की उपमा मुण्डों की माला से दी गई है(**बिभ्रत्सौधान्तलेखावलयपरिगतिं मुण्डमालामिवायं**—२७) । उत्प्रेक्षा का भी कवि ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। जितेन्द्रिय, वराह वराहदास में हरि के अंश

(=अवतार) की उत्प्रेक्षा की गई है (हरेरिवांशं वशिनं वराहं वराहवासं यमुवाहरन्ति—१२)। वसन्तकाल में मधुर और कोमल आवाजों वाली कोयलों के कामदेव के वाणों जैसे आलाप प्रवासी जनों के मनों का मानो भेदन कर रहे हैं (यस्मिन् काले कलमृदुगिरां कोकिलानां प्रलापा भिन्दन्तीव स्मरशरनिभाः प्रोषितानां मनांसि—२५)। यह उत्प्रेक्षा और उपमा की संसृष्टि का सुन्दर उदाहरण है। इस कृति में व्रणकिसलयभङ्गैः धुतधीवीधितिध्वान्तान् जैसे रूपक ले सुन्दर उदाहरण भी उपलब्ध हैं।

मन्दसौर कूपशिलालेख की भाषा सरल, सुबोध और वैदर्भी रीति के सभो गुणों से सम्पन्न है। परन्तु कहीं कहीं कवि व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करता दिखाई देता है। ऐसा प्रायः छन्द की अपेक्षा से किया गया है। स्वात्मभूत्या (१३) में स्व और आत्मन् दो समानार्थक शब्दों की आवृत्ति हुई है। इन दोनों में से किसी एक का प्रयोग ही अर्थप्रतीति के लिये पर्याप्त है। दूसरा शब्द अनावश्यक है। पद्य ५ में विनमय्य के स्थान पर विनाम्य का प्रयोग और पद्य २६ में रमयन् स्थान पर रामयन् का प्रयोग अपाणिनीय है। खानयामास के स्थान पर खातयामास का प्रयोग यद्यपि खात (खन्+क्त) शब्द के नामधातु के रूप में सिद्ध किया जा सकता है, किन्तु अप्रचलित होने के कारण खटकता है। इसी प्रकार बाहुलेय शब्द कोशग्रन्थों में 'कार्तिकेय' अर्थ में तो उपलब्ध है, किन्तु 'बैल' अर्थ में संस्कृत भाषा में अप्रयुक्त है। तथापि जनभाषा में इस शब्द के 'बहला, बहड़ा' आदि प्रतिरूप 'तरुण बैल' अर्थ में उपलब्ध हैं। जिती (६) भी अपाणिनीय प्रयोग है। कुछ विद्वान् इसे इष्टादिभ्यश्च (पा० ५।२।८८) से सिद्ध करते हैं किन्तु जित इष्टादिगण में पठित नहीं है।

कवि ने वसन्त-वर्णन के अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया है। उसने केवल दो ही पद्यों (२५-२६) में वसन्त-काल का अनुपम चित्र पाठकों की आंखों के सामने प्रस्तुत कर दिया है। जिस काल में मधुर और कोमल आवाजों वाली कोकिलों के कामदेव के वाणों के सदृश आलाप प्रवासी जनों के मनों का भेदन सा करते हैं, भ्रमरों की पंक्तियों का मधुभार के कारण गम्भीर गुञ्जन प्रत्येक वन में कामदेव की प्रकम्पित प्रत्यञ्चा वाले धनुष की तरह गूंजता हुआ सुनाई देता है, जब वायु प्रियतम से रूठी मानिनी स्त्रियों के बद्धानुराग पल्लव जैसे मुग्ध मन को बहलाता हुआ उन्हें मानभङ्ग के लिये पतियों के पास ले जाता है, उस वसन्त मास में यह कूआं बनवाया गया।' २७वें पद्य में कूप के सौन्दर्य का वर्णन भी अत्यन्त काव्यात्मक है।

इस अभिलेख में भानुगुप्ता से उत्पन्न रविकीर्त्ति के ज्येष्ठ पुत्र भगवद्दोष को संस्कृत और प्राकृत में वाक्य-रचना प्रबन्ध में वाणी के मर्म को जानने वाला और कवियों के द्वारा बढ़े हुए अनुराग के साथ प्रशंसित बताया गया है। इससे तात्कालिक राजदरबारों में काव्यरचना और शासकों की साहित्यिक रुचि का पता चलता है।